आध्यात्मिक-साधना एवं श्रमणाचार

श्री रणजीत सिंह कूमट

आध्यात्मिक-साधना में साधक पर से स्व की ओर प्रयाण करता है। आत्मबोध एवं सजगता के साथ वह तप, महाव्रत, समिति एवं गुप्ति की साधना करता हुआ असीम आत्मिक आनन्द को प्राप्त करता है। लेखक ने महाव्रत (यम), नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार नामक योगाङ्गों को विषयासक्ति से विमुख होने में बाह्य साधना माना है, वहाँ स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधि को अन्तरंग उपाय स्वीकार किया है। वे समिति का अर्थ स्मृति या जागरूकता करते हैं **-सम्पादक**

श्रमण की यात्रा भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर, पर से स्व की ओर तथा अविद्या से विद्या की ओर है। गृहस्थ (श्रावक) का अधिकांश समय जीविकोपार्जन व भौतिक साधनों के अर्जन, संचय व उपभोग तथा मौज-मस्ती में लगता है और स्व को जानने का अवसर ही नहीं मिलता। भौतिक साधनों का मोह (अविद्या) त्याग कर श्रमण-जीवन में दीक्षा अध्यात्म (विद्या) में लीन हो जीवन मुक्त होने के लिये प्रयाण है।

अध्यात्म क्या है, वह कैसे जीवन-मुक्त बनाता है तथा जैन श्रमणों के लिये निर्धारित श्रमणाचार किस प्रकार इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है, इस पर विवेचन करने का प्रयास किया जायेगा।

अध्यात्म का अर्थ

अध्यात्म का अर्थ कई प्रकार से किया जाता है, आत्मा में लीन होना, आत्मा से जुड़ना, अंतर्मुखी होना, स्व में स्थित होना, अंतर में झांकना आदि अध्यात्म के पर्याय माने जाते हैं, इसके विपरीत भौतिक साधनों या भौतिक जगत की चकाचौंध में लिप्त होना, बहिर्मुखी होना भौतिकता का पर्याय माना जाता है। जिन महापुरुषों ने वास्तविकता की पहचान कर ली है वे प्रतीति कर चुके हैं कि असीम आनंद की सत्ता आत्मा में ही है, न कि भौतिक साधनों में। अतः उनका लक्ष्य भौतिक साधन नहीं होते। साधना द्वारा आत्म-बोध प्राप्त करना, यही संबोधि, स्वबोध, समाधि एवं मुक्ति है। आत्मबोध ही अध्यात्म है और इसकी गहराई में जाने से आभास होता है कि मुक्त जीवन आनंदमय, तनावरहित और सरस होता है।

प्रत्येक प्राणी कभी न समाप्त होने वाली शांति, स्वतंत्रता और आनन्द चाहता है, परंतु अधिकांश लोग अपने आप को दुःख में पाते हैं और इसका मुख्य कारण है अकुशल या दूषित चिंतन व चित्त की चंचलता और उस पर कोई नियंत्रण न होना। अनियंत्रित चित्त बाह्य भौतिक जगत में उपलब्ध उपभोग-परिभोग की चीजों के संग्रह व उपभोग में व्यस्त रहता है, चाहना करता है। भविष्य के सुनहरे सपने संजोता है और कभी भूतकाल

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में, तो कभी भविष्य में रमण करता है। इन्द्रियों के विषय के अनुरूप प्रेरित हो इंद्रियों को तृप्त करने में लगा रहता है। इसी में सुख की तलाश करता है, इसे ही सुख मानकर इसका दास बन जाता है। इसी उधेड़-बुन में सारा जीवन बीत जाता है और संजोये सपने पूरे नहीं होने पर या वस्तु से बिछोह होने पर सुख के स्थान पर दुःखी होता है। शाश्वत सुख और आनंद के लिए चित्तवृत्ति को भौतिक जगत की चकाचौंध से मोड़ कर स्व में स्थित होने व स्वबोध प्राप्त करने के लिए अध्यात्म की ओर मुड़ना होगा। भौतिक वस्तुओं से विमुखता अध्यात्म की प्रथम आवश्यकता है। बिना विमुख हुए अध्यात्म की सीढ़ी चढ़ना असंभव है। गृहस्थ को छोड़ श्रमण जीवन में प्रवेश द्रव्य रूप से भौतिक वस्तुओं के त्याग का प्रथम कदम है। वस्तुओं व भौतिकता का त्याग अन्तरंग से हो, इसके लिए श्रमण-जीवन में भी कठिन परिश्रम व साधना की आवश्यकता है। मात्र गृहस्थ जीवन छोड़ने से मुक्ति मार्ग तय नहीं हो जाता, इसलिए श्रमण की आचार संहिता बहुत शोध व अनुभव के आधार पर बनाई गई है। चित्त बहुत चंचल है, इसकी वृत्ति अनियंत्रित व क्लिष्ट है। चित्त-वृत्ति निरोध को ही महर्षि पतंजलि ने 'योग' कहा है। चित्तवृत्ति पर नियंत्रण के बिना संयम शुरू नहीं होता। भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है-

एगे जिया, जिया पंच
पञ्च जीए, जिया दस,
दसहा उ जिवित्ताणं,
सव्वसत्तू जिणामहं

अर्थः- एक (मन) को जीतने से (पाँच इन्द्रियों) को जीता जा सकता है और पाँच को जीतने से दस (पाँच इन्द्रियों व पाँच कर्मेन्द्रियों) को जीता जा सकता है। दस को जीतने पर सर्व शत्रुओं को जीता जा सकता है। स्पष्ट है कि मन को जीतने पर सब शत्रुओं (आत्म-बोध में बाधक शत्रुओं) को जीता जा सकता है। कहावत भी है मन के जीते जीत है, मन के हारे हार। मन को साधना ही सबसे बड़ी साधना है। मन को जीतने का विषम युद्ध ही महाभारत है। मन की अनंत इच्छाओं (कौरवों की बलशाली फौज) व पाँच इन्द्रियों (पांडवों) के बीच युद्ध है। मन की इच्छाओं पर विजय ही सच्ची है। उत्तराध्ययन सूत्र को पुनः उद्धृत करते हुए निम्न सूत्र उल्लेखनीय है-

संजोगा विपमुक्कस्स एगंतमनुपस्सओ

अर्थः- संयोग (बाहरी वस्तुओं के मिलन व विछोह) को छोड़ कर मात्र मन को देखो। संयोग-वियोग ही संसार है और इसमें चित्त हमेशा लगा रहता है, मन उद्वेलित रहता है और कभी शांत नहीं होता। मन में उठ रहे विचारों को अनासक्त भाव से देखने से मन की अनन्त संकल्पनाओं से मुक्ति पाकर मन को निर्विकल्प बनाया जा सकता है। निर्विकल्प और निर्विचार मन ही शांत और समाधिपूर्ण मन है जो पूर्णतः सजग और अप्रमत्त है, उस मन में कोई लोकैषणा नहीं, न ही कामना। वह पूर्णतः अनासक्त और विरक्त है।

यदि हम ध्यान से देखें तो पता लगेगा कि हम अपने शरीर को सजाने, संवारने और चुस्त बनाने तथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियों के विषयों, यथा स्वाद, संगीत, मनोहारी दृश्य, काम-वासना आदि की पूर्ति में लगे रहते हैं, इसी प्रकार हमारे मस्तिष्क में कई प्रकार के आवेश होते हैं यथा क्रोध, मान, माया, लोभ, जिनके वशीभूत हो हम अनेक प्रकार के अकरणीय कार्य भी करते हैं। मन व इन्द्रियों को वश में कर आवेशों पर विजय पाकर शरीर के प्रति उदासीन हो जाएँ तब ही जितेन्द्रिय या जिन कहला सकते हैं, यही सच्ची मुक्ति हैं। गीता के अध्याय 4 श्लोक 19 में निम्न उद्घोषणा की है-

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
नाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

अर्थः- जिसकी संपूर्ण क्रियाएँ, मन की वासना और संकल्प से रहित हैं वह पण्डित है। वह ज्ञान को प्राप्त होकर सब कर्म सदा के लिए नष्ट कर देता है। ऐसी स्थिति वाले पुरुष को बोधस्वरूप महापुरुषों ने पंडित कहकर संबोधित किया है, अग्नि कर्म करने वाले को नहीं।

अनासक्ति के उपाय

विषय सुख की आसक्ति से मन को विमुख कराने के लिए भोग का त्याग आवश्यक है। इसके पाँच बाहरी उपाय हैं -

1. **महाव्रत-** दूसरों को दुःख पहुँचाने वाली व अहित करने वाली वृत्ति यथा हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह आदि का त्याग, इन्हें जैन दर्शन में 'महाव्रत', योग दर्शन में 'यम' तथा बौद्ध दर्शन में 'शील' कहा है। बौद्ध-दर्शन में परिग्रह के स्थान पर मद्य आदि नशीले पदार्थों के त्याग का निर्देश है।
2. **नियम-** इन्द्रिय, मन, बुद्धि के विकारों का त्याग कर मन को शुद्ध बनाना नियम कहा जाता है।
3. **आसन-** शरीर व मन की चंचलता, चपलता को त्यागने के लिए सुखपूर्वक एक स्थान पर बैठने का निर्देश है जिसे योग दर्शन में आसन कहा है तथा जैन दर्शन में सामायिक, संवर कहा है।
4. **प्राणायाम-** मन को स्थिर करने के लिए अप्रयत्नपूर्वक श्वास के आवागमन पर मन लगाने का निर्देश है। इससे मन को एकाग्र किया जा सकता है और फिर इच्छानुसार कहीं पर भी ले जाया जा सकता है। इसे पतंजलि योग में प्राणायाम तथा बौद्ध दर्शन में आनापानसती (आते-जाते सांस की स्मृति रखना) कहा है।
5. **प्रत्याहार-** इन्द्रियों व मन की वृत्तियों को जो सुख-भोग में बहिर्मुखी हो रही हैं, अंतर्मुखी कर स्व में लौटने को प्रत्याहार व जैन दर्शन में प्रतिसंलीनता कहा है।

मन को केन्द्रित करने के उपाय

इन पाँच बाहरी उपायों के अतिरिक्त अन्तरंग उपाय भी हैं। इनमें प्रमुख हैं स्वाध्याय, धारणा, ध्यान, समाधि या कायोत्सर्ग। स्वाध्याय में आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा स्व का अध्ययन समाहित है। धारणा में चित्त को शरीर के किसी एक अंग पर ले जाकर उस पर मन केन्द्रित कर वहां पर हो रही संवेदना को देखा जाता है। धारणा में प्रकट संवेदना को लगातार देखना व मन को केन्द्रित रखना ध्यान है। जब ध्यान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प-विकल्प रहित होकर पूर्ण समता में स्थित हो जाय तो इसे समाधि कहते हैं। जब शरीर से भी मन का अलगाव हो जाय और देह से देहातीत हो जाय तो कायोत्सर्ग कहलाता है। यह अवस्था जब उच्चतम स्थिति में पहुँचती है तो कैवल्य अवस्था में पहुँच जाती है। यही मुक्ति की स्थिति है। यही स्वरूप में अवस्थित होना है।

बाहरी रोक व आचरण अस्थायी हैं तथा बाहरी आकर्षण मिलने पर आचरण से विचलित होना संभव है अतः कई तरह के नियम बनाए गए हैं और उनका पालन आवश्यक माना जाता है। श्रमणाचार इसी दृष्टि से बनाया गया है, परन्तु जब अंतर में अवस्थित हो प्रज्ञा प्राप्त कर लेते हैं तो आन्तरिक विवेक ही मार्गदर्शक बन जाता है और बाहरी दबाव या दिखावे की आवश्यकता नहीं रहती। ज्ञाता को उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

अध्यात्मलीन हो मन जब नियंत्रण में आने लगता है तो बाहरी आचरण स्वतः निर्मल, उत्तेजनारहित और आदर्श हो जाता है। अन्तरंग शुद्ध है तो बाहरी आचरण शुद्ध हो जाता है। मन जब शुद्ध और निर्मल होता है तो मन में अनन्त करुणा व मैत्री प्रस्फुटित होती है। सब जीवों के साथ एकता की अनुभूति होती है। तब किसी जीव को कष्ट देना तो दूर, दुःखी देखना भी असह्य हो जाता है। यह करुणा ही अहिंसा है जो अन्दर से बिना किसी उपदेश के प्रस्फुटित होकर आचरण में स्थायी रूप से आती है। अब उसकी संवेदना व्यापक हो जाती है, अतः वह सोचता है कि वह यदि असत्य बोलेगा तो किसी को कष्ट होगा, किसी की वस्तु चुराएगा तो उसे कष्ट होगा तो अतः वह करुणावान व्यक्ति कैसे झूठ बोलेगा या चोरी करेगा? गहराई से देखें तो अहिंसा में ही सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह समाहित हैं। अतः अध्यात्म की ओर झुका व्यक्ति स्वतः ही महाव्रत या शील का पालक होता है।

जैन साधना में तप

जैन साधना में बारह प्रकार के तपों का प्रावधान है जिनमें से छः बाह्य हैं तथा छः आन्तरिक। (1) अनशन (उपवास), (2) ऊणोदरी (भूख से कम खाना), (3) भिक्षाचर्या (भीख लाकर ही भोजन करना, जिससे अहम् का विसर्जन हो), (4) रस-परित्याग (भोजन में रस लेना बंद करना व द्रव्यों के उपभोग पर सीमा लगाना), (5) कायक्लेश (सुखशीलता का त्याग), (6) प्रतिसंलीनता (बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी बनाना) ये छह बाह्य तप माने गए हैं। ये बाह्य तप हैं, लेकिन वैराग्य के हिस्से हैं और इनकी पालना के बिना मन वश में करना कठिन है। हम भोजन व विभिन्न व्यंजनों के लिए कितने लालायित रहते हैं? रसना कुछ न कुछ चटपटा, रसीला व्यंजन तलाशती रहती है। अतः अनशन, ऊणोदरी, रसपरित्याग जैसे तप रसना पर नियंत्रण के लिए हैं। जब तक मन अंतर्मुखी न बने तब तक बाह्य तप का महत्त्व है और जैसे ही मन अंतर्मुखी बन जाता है उसका इन सब चीजों में रस ही समाप्त हो जाता है और तब तप एक बाह्यातिरेक बन जाता है। इसके विपरीत (1) प्रायश्चित्त (दोषों का शोधन करना) (2) विनय (अहम् को गलाकर वंदन भाव में आना), (3) वैयावच्च (सेवा करना), (4) स्वाध्याय, (5) ध्यान व (6) कयोत्सर्ग को आन्तरिक तप बताया है। स्वाध्याय से आगम व आप्तवाणी का बोध होता है। उसकी अनुभूति ध्यान में की जाती है। मन को आर्तध्यान व रौद्रध्यान त्याग कर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मध्यान में लगाना होता है। ध्यान में लीन होने का मुख्य उद्देश्य है मन की भाग दौड़, चंचलता, ऊहापोह खत्म कर चित्त को शांत करना, समता को प्राप्त होना, समाधि को प्राप्त करना, समाधि शब्द 'सम+आधि' से बना है जिसका अर्थ है समता की आय और जब समता की आवक मन में हो तो मन में समाधि आती है। कायोत्सर्ग तब होता है जब मन देह के प्रति विमुक्त होकर देहातीत हो जाय। स्वाध्याय व ध्यान को साधना में इतना महत्त्व दिया है कि साधु को निर्देश है कि वह दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, द्वितीय प्रहर में ध्यान करे तथा तीसरे प्रहर में आहार करे। अतः जैन साधना में स्वाध्याय व ध्यान का प्रमुख स्थान है, परन्तु वर्तमान में ध्यान व कायोत्सर्ग का केवल जिक्र होता है, आचरण कम।

ध्यान की विधि

ध्यान लगा कर मन को शांत करने का सरल उपाय है- आते-जाते श्वास को देखना, उसी पर ध्यान केन्द्रित करना। जब मन एकाग्र हो जाय तो धीरे-धीरे शरीर के विभिन्न हिस्सों को देखना और वहाँ हो रही संवेदना को समता से देखना। मन की आदत है राग या द्वेष करना। जब शरीर के विभिन्न अंगों को देख रहे हैं तो वहाँ हो रही संवेदना कैसी भी हो- सुखद या दुखद या न सुखद न दुखद, सबके प्रति बिना रागद्वेष जगाये सम-भाव से देखना है और इस प्रकार मन को समता में स्थित करना है। यह अभ्यास से संभव है। अतः 'अभ्यास व वैराग्य' समता प्राप्त करने की कुंजी है।

समिति : वर्तमान में रहना

इस प्रकार मन की आदत है भूत या भविष्य में रमण करना। वह वर्तमान में टिकता ही नहीं। भूत के सुख या दुःख भरे दिनों को वह याद करेगा, अन्यथा भविष्य के सुनहरे सपने संजोयेगा या भविष्य की चिंता कर दुःखी हो जायेगा। परन्तु भूत व भविष्य को छोड़ वर्तमान को स्वीकार कर लेगा और इसी में आनंद मनायेगा तो समता व समाधि को प्राप्त कर लेगा। वर्तमान ही सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जो चला गया वह आ नहीं सकता। और जो अभी आया नहीं उस पर कोई जोर नहीं। अतः वर्तमान पर ध्यान देना, इसी में जीना व इसका लाभ उठा कर भविष्य का निर्माण करना ज्ञानवान का काम है। जो वर्तमान में नहीं जीता वह वर्तमान के सुख से तो वंचित है ही, भविष्य भी बिगाड़ रहा है। वर्तमान में जो भी कर रहे हैं उसे ध्यान से व स्मृतिपूर्वक किया जाय। इसे ही विवेक कहते हैं और दशवैकालिक सूत्र के अनुसार विवेक से (यत्नपूर्वक) कार्य करने से पाप कर्म का बंध नहीं होता, यह निम्न सूत्र से स्पष्ट है-

जयं चरे, जय चिट्ठे, जयमासे, जयं सए।
जयं भुंजंतो-भासंतो, पाव कम्मं न बंधइ।।

-दशवैकालिक सूत्र,4.7

अर्थः- यत्न से चले, यत्न से बैठे, यत्न से सोये, यत्न से खाए और यत्न से बात करे तो पाप कर्म का बंधन नहीं होता। यहाँ यत्न का अर्थ है विवेक या ध्यान से काम करना। जो भी काम यत्न से होता है वह विवेकपूर्ण होता है

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसमें कर्ता का ध्यान पूर्णतः लगा है। उसे ध्यान है कि वह क्या कर रहा है और क्यों कर रहा है और करते वक्त जो भी सही रूप से करना है उसकी स्मृति रहती है। यह स्मृति ही बाद में बिगड़ कर 'समिति' बन गया। श्रमण के लिए पाँच समिति व तीन गुप्ति का प्रावधान है और उसका पालन श्रमणाचार का विशेष अंग है। पाँच समिति निम्न प्रकार हैं-

1. ईर्या समिति (आवागमन स्मृति पूर्वक करना)
2. भाषा समिति (भाषा ध्यानपूर्वक बोलना)
3. एषणा समिति (भिक्षा ध्यानपूर्वक लाना)
4. निक्षेपण समिति (वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि ध्यानपूर्वक उपयोग में लेना)
5. प्रतिष्ठापना समिति (मल-मूत्र-श्लेष्म आदि का प्रतिष्ठापन ध्यानपूर्वक करना)

प्रत्येक कार्य को ध्यानपूर्वक करना भी ध्यान की साधना के समान है। चलते वक्त ध्यानपूर्वक चलें तो साधना है और तेजी से बातें करते हुए या इधर-उधर देखते हुए चलना अविवेक है। ईर्या समिति के लिए निर्देश है कि नीचे दृष्टि रखकर, देह प्रमाण भूमि देखकर व अन्य कार्यों व विचारों से मन हटाकर ध्यान से चलना चाहिए। अनुभव करके देखें कि यदि ध्यानपूर्वक चलें तो नज़र दो गज से ज्यादा उठ ही नहीं सकती। चलते वक्त चिंतन व अन्य कोई काम न करें तो चलन स्मृतिपूर्वक यत्न से होगा और पाप का बंध भी नहीं होगा।

श्रमण के लिए पाँच महाव्रत, बारह तप, पाँच समिति एवं तीन गुप्ति का प्रावधान मुख्य है। तीन गुप्ति में मन, वचन व काया को गुप्त करने का निर्देश है अर्थात् मन को व्यर्थ में इधर-उधर जाने न दें। वचन कम से कम बोलें व जो भी बोलें किसी के लिए कष्टप्रद न बोलें। काया को भी साधना के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य में प्रयुक्त न करें। अध्यात्म में लीन श्रमण बाह्य आचार से अधिक आन्तरिक शुद्धि में व्यस्त रहता है। आन्तरिक शुद्धि ही अंतिम लक्ष्य है और बाह्य आचार प्रारम्भिक भूमिका है जो अंतर में जाने में सहायक है।

आचार बाहरी या ऊपरी निर्देश है जो साधक के लिए प्रारम्भिक अवस्था में मार्गदर्शक, रक्षाकवच और लक्ष्यप्राप्ति में सहायक होता है। आचार को द्रव्य रूप से पालने की अपेक्षा भावपूर्वक पालना अधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने लक्ष्य पर पहुँचने पर आचार चारित्र में परिवर्तित हो जाता है। चारित्र वह है जो स्व विवेक व प्रज्ञा से प्रकट होता है और जिसमें बाहरी निर्देश की आवश्यकता नहीं रहती। यही चारित्र 'यथाख्यात' चारित्र कहलाता है जिसका अर्थ है जो प्रकट में है वैसा ही अंतरंग में है, दिखावे के लिए कुछ भी नहीं है। वही चारित्र स्थायी चारित्र है। क्योंकि थोपा हुआ आचरण कभी भी स्खलित हो सकता है। यथाख्यात चारित्र अंतिम स्थिति है और उस पर बाहरी संस्कार या आवेश का कोई असर नहीं होने वाला है। आन्तरिक साधना से स्वतः यथाख्यात चरित्र की प्राप्ति होगी और वही स्थायी चारित्र है।

C-1703, Lake Castle, Hiranadani Garden, Powai, Mumbai-400076 (Mh.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org